वेद के विषय में भ्रांति ही भ्रांति

वेद के बारे में लिखा, पढ़ा, सुना बहुत जाता है, पर वेद को ध्यान से देखने पर ऐसा पता लगता है कि जो कुछ भी सुना है, पढ़ा है, सब गलत है।

चार वेदों की बात सबने सुनी और पढ़ी भी होगी, पर कोई कहे कि यजुर्वेद ले आइए, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। क्योंकि यजुर्वेद जैसी कोई किताब आपको मिलेगी ही नहीं। जो मिलता है वो या तो शुक्ल यजुर्वेद है या कृष्ण यजुर्वेद। 'शुक्ल' या 'कृष्ण' लगाए बगैर यजुर्वेद का कोई अर्थ ही नहीं होता।

यही नहीं, शुक्ल यजुर्वेद या कृष्ण यजुर्वेद जैसी भी कोई किताब नहीं है। किसी से कोई यही कहे कि शुक्ल यजुर्वेद ले आओ तो वो परेशानी में पड़ जाएगा, क्योंकि शुक्ल यजुर्वेद जैसी कोई चीज ही नहीं है। जो किताब उसे मिलेगी वो तो खाली शुक्ल यजुर्वेद नहीं होगी, उसके सामने तो यह जरूर लिखा होगा कि वो वाजसनेयी माध्यन्दन संहिता है या काण्व संहिता। इसी तरह कृष्ण यजुर्वेद जैसी कोई चीज़ नहीं है या तो वो तैत्तिरीय संहिता होगी या काठक या मैत्रायणी या 'काठक कपिष्ठल'। इनमें से कोई एक ही आपको मिलेगी हालांकि दूसरी भी हैं, पर वह सब कृष्ण यजुर्वेद ही कहलाती हैं।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। यही हाल सामवेद और अथर्ववेद का भी है। जो मिलता है वो या तो सामवेद की कौथुम संहिता, या याणायनीय संहिता या जैमिनीय संहिता होती है। इसी तरह अथर्ववेद की दो अलग-अलग संहिताएँ मिलती हैं जिनका नाम या तो शौनक है या पैप्पलाद।

बात इतनी ही होती तो परेशानी तो होती पर इतनी नहीं जितना कि वेद के बारे में और जानने पर होती है। पहले की किताबों में तो इससे भी कहीं ज़्यादा संहिताओं का वर्णन है। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनकी और अनेक शाखाओं का वर्णन किया है और चरणव्यूह सूत्र में भी।

यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की बात छोड़ भी दें तो भी ऋग्वेद की ही 21 शाखाओं का वर्णन पतंजलि महाभाष्य में मिलता है, और चरणव्यूह में 5 शाखाओं का। ऐसा लगता है कि पतंजलि जो ईसा से 200 साल पहले हुए थे, से

चरणव्यूह सूत्र तक आते-आते ऋग्वेद की 16 संहिताएँ लुप्त हो चुकी थीं। और चरणव्यूह से आते-आते बड़ी मुश्किल से ही एक बच पाई है।

ऋग्वेद की एक ही संहिता मिलती है। लेकिन इसको ध्यान से देखने पर पता चलता है कि वह अगर पूरी तरह से गलत नहीं है तो भी काफी गलत है। ऋषि कौन थे, देवता कौन थे, इसके बारे में जो कुछ भी कहा या सुना है, गलत है। देवताओं की बात करें, तो उखल मूसल भी देवता हैं जिनके बारे में हमारे ऋषियों ने मंत्र रचना की है। यह कहना मुश्किल होगा कि उन्होंने इन मंत्रों के दर्शन किए थे और इसलिए वे 'मन्त्र दृष्टा' कहलाए थे। यही नहीं, बहुत बार तो ये 'मन्त्र दृष्टा' ऋषि अपनी ही प्रशंसा में मंत्र लिखते थे और इसी के आधार पर इन मंत्रों का 'देवता' इन्हें स्वयं माना गया है। और जब कभी इन ऋग्वेद के सूक्तों में संवाद की चर्चा होती है तो वही ऋषि देवता बन जाता है और जो देवता है वह ऋषि बन जाता है।

दसवें मंडल के प्रसिद्ध 15वें सूक्त में पुरुरवा और उर्वशी के बीच में संवाद है जहाँ जब पुरुरवा बोलते है तब वे ऋषि हो जाते हैं और उर्वशी देवता, इसी तरह जब उर्वशी बोलती हैं तो वो ऋषि हो जाती हैं और पुरुरवा देवता। इसी तरह दशम् मंडल के दसवें सूक्त में यम और यमी का प्रसिद्ध संवाद है। वहाँ भी जब यमी बोलती है तो वो ऋषि होती हैं और यम देवता, और जब यम बोलते हैं तो ऋषि होते हैं, यमी देवता।

यही नहीं, ऋग्वेद में ऐसे अनेकों सूक्त हैं जिनमें देवताओं की जगह भाववृत्तम् लिखा हुआ है, जिसका अर्थ शायद यही है कि उनका कोई देवता नहीं है। वे तो केवल बौद्धिक चिन्तन मात्र हैं या केवल विचार के बारे में हैं, जिसका न देवताओं से संबंध है, न यज्ञ से। दसवें मण्डल का प्रसिद्ध नासदीय सूक्त इसी कोटि में आता है। और यही बात कुछ-कुछ पुरुष सूक्त के बारे में भी है जो दसवें मण्डल का 90वाँ सूक्त है, हालांकि उसमें 'पुरुष' को देवता के रूप में माना गया है जिसका वास्तव में कोई अर्थ ही नहीं बनता। यह ठीक है कि पुरुष की चर्चा उस सूक्त में है लेकिन उस प्रकार से नहीं जैसे देवताओं की होती है, और न ही उससे कुछ 'माँगने' की प्रार्थना है। एक तरह से कई अन्य सूक्त भी ऐसे ही हैं जहाँ देवता उसी को मान लिया गया है जिसकी बात सूक्त में की गई है। 'दुःस्वप्ननाशनम्' या 'यक्ष्मानाशनम्' ऐसे ही देवता हैं। ऐसे उदाहरण 10वें मण्डल में बहुत मिलते हैं।

देवताओं की संख्या आखिरी मण्डलों में इतनी अधिक हो जाती है कि ऐसा लगता है जैसे 'नए' देवताओं की सृष्टि हो रही है। यही बात ऋषियों के बारे में भी दिखाई देती है। 10वें मण्डल में ही 100 से अधिक ऋषि हैं जिनका उन ऋषि परम्पराओं से कोई सम्बन्ध नहीं है जो दूसरे से सातवें मण्डल तक मिलते हैं। ऐसा सबको मालूम है दूसरा मंडल आंगिरस और भार्गव ऋषियों का है, जबकि तीसरा मण्डल विश्वमित्र का है, चौथा मण्डल गौतम का, पाँचवाँ मण्डल आत्रेय का, छठा मण्डल भरद्वाज का और सातवाँ मण्डल वशिष्ठ का। यही 7 ऋषिकृत वेद के

प्रधान ऋषि थे और इन्होंने ही सबसे ज्यादा सूक्तों की रचना की थी। पहले और 8वें मण्डल में काण्व कुल के ऋषि काफी संख्या में मिलते हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि इस कुल के ऋषियों को पूरी मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी क्योंकि इनका कोई स्वतंत्र अपना मण्डल ऋग्वेद में नहीं है।

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता से ऐसा पता चलता है कि इनका प्राधान्य बाद में होने लगा था, हालांकि वेद के प्रसिद्ध विद्वान सातवलेकर का मानना है कि ऋग्वेद के काण्व ऋषियों का काण्व संहिता के ऋषियों से कोई विशेष संबंध नहीं था। लेकिन यह बात ठीक नहीं लगती क्योंकि ऋग्वेद में काण्व ऋषियों के सूक्त पहले और आठवें मण्डल में ही मिलते हैं, जिनकी रचना बाद की मानी जाती है। जो भी हो, अगर हम काण्व कुल के ऋषियों को भी उन 7 ऋषिकुल में मान लें जो ऋग्वेद के प्रधान ऋषि थे, तब भी यह समस्या तो रहती ही है कि इतने नए ऋषि जिनका अपना कोई विशिष्ट कुल दिखाई नहीं देता और जिनमें से बहुतों के तो एक या दो ही सूक्त हैं, वे कहाँ से आए और उनके मंत्र ऋग्वेद में कैसे और क्यों शामिल किए गए। यह सवाल तब और भी जटिल हो जाता है जब हम इन ऋषियों के नाम पर ध्यान दें, और इनके देवताओं के बारे में सोचें। इनमें से बहुत सारे ऋषि तो 'आर्य' कहे जाने वाले लोगों से भिन्न प्रतीत होते हैं। कुछ तो स्पष्ट रूप में जिन्हें आज हम आदिवासी या जंगल में रहने वाले लोग कहते हैं, 'वह' लगते हैं। उनके नाम के आगे 'सर्प' लिखा हुआ है और उनके देवताओं का नाम 'प्रस्तरखंड' यानि पत्थर या शिला का टुकड़ा बताया गया है। इनमें से एक अपने को 'सर्पराज्ञी' कहती है जिसका अर्थ यही हो सकता है कि वो इन लोगों में 'रानी' थी।

'सर्पराज्ञी' की बात करते ही ऋग्वेद में एक नयी बात मिलती है जिसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। यह बात उन ऋषिकाओं या स्त्री ऋषियों की है जिनके सूक्त 10वें मण्डल में काफी मात्रा में मिलते हैं। इनकी आवाज़ ऋषियों से भिन्न है। ये कभी तो शादी ब्याह की बात करती हैं और कभी गर्मस्राव की।

कभी तो इनकी समस्या इनकी सपत्नियों के बारे में है और कहीं तो वह अपने उन ऋषियों से परेशान हैं जो तपस्या में लीन रहते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और उनकी तरफ ध्यान नहीं देते।

इनमें से कुछ ने तो अपनी चर्चा भी की है और कहीं तो वाक् या वाणी की भी। ऐसा लगता है कि वेद मंत्रों की रचना के आखिरी काल में बहुत सारी नई जातियों और उनके देवता आर्य कहे जाने वाले लोगों के समाज में दाखिल हो गए थे और उनको मान्यताएँ भी दे दी गई थीं। इनके देवताओं और उनके मंत्रों को ऋग्वेद में स्थान देना ही यह सूचित करता है कि आर्य नाम से जाने वाली सभ्यता भारत में फैल रही थी। यही नहीं, कुछ ऋषियों के नाम से तो ऐसा भी लगता है वे उन नई जातियों में से थे जो कपड़े बुनने जैसा काम करते थे। एक ऋषि तो साफ

कहता है कि उसका पिता वैद्य था, और उसकी माँ धान कूटने वाली लगती है, नये काम-काज शुरू हो रहे थे और उनमें काम करने वाली नई जातियाँ बन रही थी।

एक तरह से यह विशाल सामाजिक परिवर्तन था जिसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इससे भी ज्यादा आश्चर्य की बात तो यह है कि उत्तर-वैदिक काल में यह सब होने पर भी, बाद में स्त्रियों और शूद्रों की समस्या मीमांसा सूत्र और ब्रह्मसूत्र दोनों में मिलती है। इनको यज्ञ करने का अधिकार दिया जाए या नहीं, मीमांसा सूत्र में विशद चर्चा है, और ब्रह्मसूत्र में तो शूद्रों का ब्रह्म-विद्या का अधिकार है या नहीं, इस पर स्वयं आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में बहुत लम्बी चर्चा की है। इससे ज़्यादा आश्चर्य की बात क्या होगी कि वेद को प्रामाणिक मानने वाले इन लोगों ने वेद में ही जो स्पष्ट था, उसकी अवहेलना की है। क्या जैमिनि, बादरायण, शंकर वेद को वास्तव में मानते थे, इस पर ऋग्वेद को ध्यान से देखने के बाद हर एक को संदेह तो होगा ही।

आदमी के सामने, शुरु से, जब से उसने सोचना शुरु किया, यह सवाल पैदा हुआ, कि आखिर यह सब कुछ जो है, यह कैसे हुआ, कब से हुआ और क्यों हुआ। इसका जवाब देने की कोशिश में सदियाँ दर सदियाँ गुज़र गईं, पर सवाल वहीं का वहीं है। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति तो सबको पता है और आज का आदमी तो फूले नहीं समाता कि उसने क्या-क्या उपलब्धियाँ कर ली हैं। रोज़ नई-नई ईजादें होती हैं, और ऐसी खबरें आती हैं जिनको पढ़कर भी यकीन नहीं होता कि ऐसी बातें भी हो सकती हैं।

लेकिन जिन सवालों से आदमी ने अपने सोचने की शुरुआत की थी, वे सब वहीं के वहीं है। यह सब कहाँ, कैसे हुआ और इसका क्या कभी अन्त होगा, इन सवालों का जवाब किसी के पास नहीं है। आदमी अपनी जिन्दगी आज भी वैसे ही जीता है जैसे जब जीता था, जब उसकी कहानी की शुरुआत कहीं लिखी हुई दास्तानों में मिलती है। यह ठीक है कि लिखा हुआ मिलने के पहले भी बहुत कुछ मिलता है, लेकिन उससे आदमी के वे सवाल जो उसके मन में उठते थे, पता नहीं लगते।

हिन्दुस्तान में जिसे वेद कहते हैं उसमें कई जगह इन सवालों की झलक दिखाई पड़ती है और हमारी खुशकिस्मती से उन लोगों के नाम भी मिलते हैं जिन लोगों ने ये सवाल उठाए थे।

पहला सवाल तो यह है कि वेद के समकालीन या उससे कुछ पहले की संस्कृति या सभ्यता मिलती है। मिस्र की मिसाल सबको पता है और मेसोपोटामिया की, और अभी हाल में दक्षिण अमेरिका की उस संस्कृति सभ्यता का पता चला है जो ईसा से 2600 साल पहले की बताई जाती है और जिसका नाम 'माया' है। चीन की सभ्यता भी बहुत पुरानी है, लेकिन यह सब होते हुए भी

वेद में जितना मिलता है वो और कहीं नहीं मिलता। लेकिन इसमें भी ध्यान रखने की बात यह है कि 'वेद' के नाम से जाने जाने वाला ग्रंथ कोई एक ही समय में बनाया नहीं गया था। जो लोग इस बारे में जानते हैं, वे कहते हैं कि कम से कम 1 हजार साल तो इसमें लगा ही होगा और इसको ईसा से 2500 वर्ष पूर्व और 1500 वर्ष के बीच में रखते हैं। 1000 साल बहुत होते हैं और इसमें किसी चीज़ का 'रख पाना', बगैर उसमें कुछ 'जोड़े', 'खोए' नामुमकिन ही लगता है। यदि नहीं, अगर इसको मान भी लें तो इससे यह 'सीधी-साधी' समस्या उठती है कि पहली चर्चा जो हमें मिलती है वो मुश्किल से ईसा के 600/700 साल पहले की है। इसको निघण्टु और निरुक्त के नाम से सब लोग जानते हैं। पर अगर कोई यह पूछे कि ईसा के 1500 सदी पूर्व और इस 600/700 सदी पूर्व के बीच में क्या हुआ, तो जहाँ तक मैं जानता हूँ, न किसी ने यह सवाल उठाया है न किसी ने इसका जवाब दिया है।

इतने बड़े विद्वानों की 'बुद्धि' पर आश्चर्य हुए बिना रहा नहीं जाता। इस करीब-करीब हज़ार साल में हम जिसे 'वेद' कहते हैं उसका क्या हुआ और वेद के बारे में जो चर्चा है वो प्रधानत: किस वेद के बारे में है। चर्चा तो ऋग्वेद की ही मालूम होती है और उसमें भी देवताओं की। यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की चर्चा तो उसमें मिलती ही नहीं। इससे यह माना जा सकता है कि ये वेद बाद में रचे गए, क्योंकि इनकी चर्चा न तो यास्क में है, न निघण्टु में ही, परंपरा में यह ज़रूर है।

❑

भारतीय दर्शन में 'दार्शनिक चर्चा' का स्वरूप: बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य का जनक के यज्ञ में आये ऋषियों से संवाद

बृहदारण्यक की कथा, सबको पता है। जनक की सभा में जो हुआ उसकी बात वेदान्ती बार-बार कहते नहीं अंघाते, परन्तु वास्तव में हुआ क्या था इस पर विचार शायद ही गहराई से किसी ने किया है। बात साधारण है, पर हम यदि थोड़ी देर के लिए ये भूल जायें कि ये ग्रन्थ 'उपनिषद्' कहलाता है और इसका हीरो याज्ञवल्क्य है तो शायद हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा कि उस समय में दार्शनिक सम्वाद, सम्वाद न होकर, प्रतिस्पर्धा का रूप लेते थे जो आज के युग में साधारण से साधारण लोगों को भी शायद ही उचित लगेगा। आइये, जनक की सभा में चलें और देखें कि वहाँ क्या हो रहा है–

यज्ञ पूरा हो चुका है। दूर-दूर से याज्ञिक, विद्वान, ऋषि और ज्ञानी पहले ही एकत्रित हो चुके हैं, जो कुछ होना है, यज्ञ से सम्बन्धित उत्सव समाप्त प्राय: ही था उसी समय जनक एक नई घोषणा करते हैं; वे कहते हैं, सहस्त्र गौएँ दान में दी जायेंगी (620)। इन गायों के दस-दस पाद सुवर्ण सींगों से बँधे थे।

ग्रन्थ में ऐसा स्पष्ट लिखा हुआ है कि जो ब्राह्मण वहाँ एकत्रित हुए थे, कुछ पाँचाल के थे। यदि ऐसा था तो ये भी कुछ हद तक तो मानना पड़ेगा कि जनक की राजधानी कहीं इसी प्रदेश में होगी और यदि ऐसा था तो यह जनक शायद उन जनक से भिन्न हैं जो मिथिला में राज्य करते थे और जिनकी प्रसिद्धि रामायण की कथा के सन्दर्भ में है। वैसे तो जनका को 'विदेह' देश का राजा बताया गया है परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि यह 'विदेह' कहाँ था। अगर इसको मिथिला में मान भी लें तो फिर ये समस्या उठेगी कि आखिर क्या वहाँ ब्राह्मण नहीं थे।

जो भी हो दार्शनिक दृष्टि से दार्शनिक सन्दर्भ में यह बात अवान्तर है। असली बात तो यह है कि जनक की जिज्ञासा क्या थी और वे किस प्रश्न का उत्तर जानना चाहते थे और यह भी उस उत्तर को जानने के लिए उन्हें इतनी सारी गायें और सुवर्ण देने की जरूरत क्यों हुई। क्या ज्ञानी लोग इतने लोभी होते हैं कि प्रश्न